तप तिराते हैं

(मुनि श्री पद्मरत्नविजयजी महाराज)
(सुशिष्य जैनाचार्य श्रीमद्विजयजयंतसेनसूरिजी)

अनादि से चले आ रहे इस संसार में कभी क्षण मात्र भी किसी जीव को शांति नहीं है। शांति को प्राप्त करने के लिये तीर्थंकर परमात्मा ने तप बताया है। तप से बढ़कर तेज किसी का नहीं है, तप से आत्मा का तेज बढ़ता है, जैसे आग में डाले गये सोने को ज्यों ज्यों तपाया जाता है, त्यों-त्यों उसका तेज बढ़ता जाता है, वैसे ही तपरूपी आग में जो अपने तनमन को तपाता है उसका भी तेज बढ़ता जाता है। तप शील और संयम का परम मित्र है। तप करने से विषय वासना का दमन होता है। तप से तन, मन और आत्मा के रोगों का निवारण होता है और तीनों निर्मल बनते हैं। आरोग्यता प्राप्त होती है। तप याने कर्म रोगों की अचूक रामबाण दवा। तप से जीवों को भी अभयदान मिलता है, कारण तप करने से अनेक अनावश्यक आरंभ समारंभ से निवृत्ति मिलती है। तप से इंद्रियों का दमन, कषायों का वमन, वासनाओं का शमन होता है, तप से एकाग्रता आती है— यह मन स्थिर करने का अमोघ साधन है। तप और भोजन के बारहवाँ चन्द्रमा है, तप किया व अनेक मान्यता में फलाहार की छूट रखते हैं व फिर रोज के आहार से भी ज्यादा उदर पूर्ति कर लेते हैं ऐसा तप कैसा? तप याने आत्मानुभूति की ओर अग्रसर होना। तप क्षमायुक्त शल्य रहित होना चाहिये। तप के बिना आत्मा उज्ज्वल नहीं हो सकती। तपस्या से देवता भी वश में हो जाते हैं व अनेक सिद्धियां स्वतः प्राप्त हो जाती हैं। तप से अनेकों आधि व्याधि उपाधियां दूर होती हैं। तप से इह लौकिक व पारलौकिक अनेक जन्मों के पापों का प्रक्षालन हो अनिष्ट दूर होते हैं। समभावपूर्वक जो तप किया जाता है, वह महान फलदायी होता है। उपवास याने "उप समीपे वसति आत्मनः इति उपवास" याने आत्मा के पास रहना उपवास है अर्थात् केवल आत्मा परमात्मा का ही चिन्तन करना और उसमें ही मन लगाना। उपवास के दिन यदि आहारादि में मन लग गया तो परमात्मा की ओर से मन अवश्य ही हट जाएगा और उपवास टूट जाएगा, क्योंकि एक समय में मन एक जगह ही स्थिर होता है—अधिक जगह नहीं।

शुद्ध तप की आचरणा द्वारा देवताओं को भी वश में किया जा सकता है। तप से अनेक प्रकार की सिद्धियां प्राप्त हो सकती हैं और जन्म-जन्म के पापों का नाश होता है।

कोई भी तप पच्चक्खाण लेकर किया जाता है, पच्चक्खाण का अर्थ है प्रतिज्ञापूर्वक किया गया त्याग। मात्र नोकारसी के पच्चक्खाण से भी नरक गति के सौ साल का बंध टूट जाता है। पच्चक्खाण पूर्वक किये गये बड़े तप का तो कहना ही क्या? भगवान महावीर ने दीक्षा के बाद स्वयं साढ़े बारह वर्ष तक घोर तप किया था, फिर

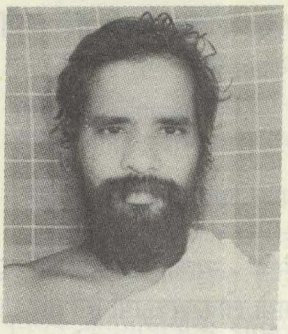

मुनिश्री पद्मरत्नविजयजी म.

भी भगवान महावीर ने स्वयं धन्ना अणगार के तप की प्रशंसा की। धन्ना अणगार ने अपने तप द्वारा पूरे शरीर को ऐसा जीर्ण बना दिया था कि चलते समय उसके शरीर की अस्थियों से ध्वनि उत्पन्न होती थी।

तपस्वी को अहंकार से दूर रहना चाहिये, अहंकार आत्मा के लिये रोग है। इससे सदा बचना चाहिये। अहंकारी विनय से वंचित रहता है। अहंकार के त्यागपूर्वक जो तपता है वही अपना विकास कर पाता है। बीस स्थानक तप की आराधना से तीर्थंकर नाम का कर्म निकाचित हो सकता है। बहुत बड़ी महिमा है तप की। तपस्वी केवलज्ञान तक प्राप्त कर सकता है।

अनशन, अनोदरी, वृत्तिसंक्षेप, रसत्याग, कायक्लेश और संलीनता बाह्य तप हैं, इसी प्रकार प्रायश्चित, विनय, वैयावच्च स्वाध्याय, ध्यान और कायोत्सर्ग आभ्यंतर तप है। **बाह्यतप आभ्यंतरतप पूर्वक ही करना चाहिये।** इसी में उसकी सार्थकता है। आभ्यंतर तप सहित बाह्यतप सुगंधित स्वर्ण सा है। आभ्यंतर तप बाह्यतप का मूल बढ़ावा है। केवल बाह्यतप से जितने कर्मों की निर्जरा होती है उससे अनंत गुना अधिक कर्मों की निर्जरा आभ्यंतर तप सहित किये गये बाह्यतप से होती है। अतः अपना विवेक जाग्रत रखकर आभ्यंतर तपपूर्वक बाह्य तप करना आराधकों के लिये उचित है।

जैन दर्शन में बारह प्रकार का तप धर्म बताया है:— छह बाह्य व छह आभ्यंतर:—

१. **अनशन** — उपवासादि करना, जिससे क्षुधापर काबू पाया जा सके।
२. **उणोदरी**— नित्य के आहार से कम करना। क्रोधादि को दूर करने का उपाय करना भाव उणोदरी है।
३. **वृत्ति संक्षेप**— दिनभर में उपयोगी खाने पीने की वस्तु की धारणा करना जैसे दिन भर में ५, १० आदि द्रव्य रखना द्रव्यवृत्ति संक्षेप, अमुक समय तक रखना, समय वृत्ति संक्षेप, इतने क्षेत्र, स्थान पर खाना क्षेत्र वृत्ति संक्षेप रागद्वेष को छोड़ने हेतु धारणा करना भाव वृत्ति संक्षेप है।
४. **रस त्याग** :— महाविगई (मांस, मदिरा, शहद आदि) का पूर्णतः त्याग व दूध, दही, घी, तेल, गुड़, कढ़ाई (मिठाई) इन चीजों में से अमुक अमुक त्याग करना रसत्याग है।

(शेष पृष्ठ १४ पर)

वैर भाव मन में बसा, उदित हुआ जब क्रोध ।
जयन्तसेन मूर्ख बना, लेता वह प्रतिशोध ॥

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org